Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Impact Factor : 2.1506(UIF)
Volume-4 | Issue-1 | Feb-2014 Available online at www. isrj.net

महाभारत में व्याख्यायित क्षात्र-धर्म

विनोद कुमार,
लवली प्रोफ़ैशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब)

lkjk'k : श्रीमद्भगवद्गीता संपूर्ण वेदों का सार है। इसका गहन-गंभीर मर्म निरंतर अभ्यास करते रहने पर भी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो पाता। श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीताजी का वर्णन करने के उपरान्त कहा है—
'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। या स्वयं पद्मनाभस्य पद्मनाद्विनिः सृता।।'

प्रस्तावना :-

'गीता सुगीता करने योग्य है, अर्थात श्रीगीताजी को भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है। यह चिंतन का विषय है कि मोह के कारण क्षात्र धर्म से विमुख होकर भिक्षा के अन्न से निर्वाह करने के लिए तैयार हुए अर्जुन ने जिस परम रहस्यमय गीता के उपदेश से आजीवन गृहस्थ में रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया। गीता का यह यह कर्म-धर्म सन्देश मात्र अर्जुन के लिए ही नहीं वरन् युगों-युगों तक की भावी पीढ़ियों के लिए भी है, जो अपने क्षात्र-धर्म से च्युत हो जीवन-पलायन को अभिमुख होते हैं। अर्जुन को माध्यम बनाकर कृष्ण-मुखारविन्द से जो वचनामृत निसृत हुए हैं वे आज और भी अधिक प्रासंगिक एवं उद्देश्यपूर्ण हो उठे हैं; क्योंकि आज स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है और काल के इस प्रभाव से मनुष्य- चाहे वह किसी भी वर्ण का हो, अपने कर्तव्य से मुख मोड़ बैठा है। वर्णाश्रम व्यवस्था एवं चातुर्वर्ण्य व्यवस्था सदैव ही समाज में रही है और रहेगी। भारतीय दर्शन में धर्म की व्याख्या की है "धारणात् धर्मा इत्याहू: धर्मो धारयते प्रजा:" । ब्रह्माण्ड में जो अनन्त शक्तियाँ सदा बहती रहती हैं, उनको सुयोग्य धारणा एवं उनसे जनकल्याण के उपाय करना ही धर्म है । श्रीमद्भगद्गीता में चातुर्वर्ण्य के बारे में स्पष्ट कहा गया है।

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः । वस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमक्ष्ययम् ॥

महर्षि यास्क ने अपने ग्रन्थ 'नुरुक्त' में क्षत्रिय शब्द का अच्छा विवेचन किया है। उनका कथन है – क्षातात त्राय ते इति क्षत्रिय। मनु महाराज [1] ने भी प्रजापालन को क्षत्रिय का धर्म बतलाया है। अन्यत्र गीता में कहा गया है-

शौर्य तेजो ध्रुतिर्दाक्ष युद्धे चाप्य पलायनम। दान्मिश्वर भावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम॥ [2]

जन्मतः कोई ब्राह्मण नहीं है । जन्मत: सारे शूद्र हैं । उत्तम संस्कारों के कारण कोई भी ब्राह्मण बन सकता है । क्षत्रिय - जो अपने क्षेत्र की रक्षा करता है वह क्षत्रिय है । प्रश्न उठता है कि कौन सा क्षेत्र ? श्री गीता में कहा गया है- इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्र मित्ययिधीयते । एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इतितद्विदः ॥ आशय यह है कि अपना शरीर ही वह क्षेत्र है तथा जो शरीर की रक्षा करे वह क्षत्रिय है । कहा गया है कि सर्वसाधना का पल उपकरण है जिसकी आत्मसाधना के कारण रक्षा करना आवश्यक है । शरीर की रक्षा शरीर के लिये नही वरण आत्मसाधन के लिये जरूरी है । आत्मसाधना का फल आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान होते हैं । परन्तु सभी एकदम से ब्रह्मज्ञानी नहीं बन सकते । इस उच्च अवस्था तक पहुँचने के लिये आत्मसाधना करनी पड़ती है । आत्मसाधना के लिये शरीर की रक्षा करना आवश्यक है । अतः जो साधक नियमबद्ध रहकर शरीर की रक्षा करता है वह क्षत्रिय कहलाता है । इस प्रकार अपना स्वास्थ्य एवं कृतिक्षेत्र की रक्षा करने वाले जन जहाँ भी होंगे वे उस समाज के क्षत्रिय माने जायेंगे

स्वदर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥ [3]

गीता के दूसरे अध्याय में भगवान कृष्ण अर्जुन को जगा रहे हैं- हे अर्जुन, तुम क्षत्रिय हो और अगर तुम अपने धर्म को भी देखो तो तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। एक क्षत्रिय के लिए देश रक्षा ,धर्म रक्षा से बड़ा कोई और धर्म नहीं है। धर्म युद्ध से बड़ा कोई और साधन तुम्हारे कल्याण के लिए नहीं हो सकता है। इसलिए परिणाम जो भी हो तुम युद्ध करो। कर्म करो और अपने स्वधर्म को भी तुम देखो। तुम्हें ज़रा भी भयभीत और निराश नहीं होना चाहिए। हर व्यक्ति अपनी अपनी क्षमता के साथ समाज सेवा कर रहा है आजीविका तो सबको चाहिए। तुम भी धर्म युद्ध करो। हे पृथानन्दन ,अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के खुले द्वार जैसा है ,जो सौभाग्य शाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है [4] और ये तू जो कायरों की तरह भागने की बात कर रहा है जानता है सभी ये कहेंगे अर्जुन पहले से ही कायर था। कायर का ही उसका स्वरूप था। मर जाएगा युद्ध में तो तुम्हें यश मिलेगा भागेगा तो अपयश का भागी बनेगा।

तत्कालीन विचारधाराओं के आधार पर अर्जुन तो उस युद्ध को कठोर कर्म और पाप कर्म मानने लगा था। वह उन विचारधाराओं से इस सीमा तक प्रभावित हो चुका था कि वह स्वधर्म, क्षात्रधर्म, 'परित्राणाय साधुनां' तथा 'धर्म संस्थापनार्थाय' युद्ध कर आततायियों-अन्यायियों को मारने के अपने उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ने लगा था।

वासुदेव कृष्ण ने अर्जुन की गलत मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए धर्म के अनुसार उसे युद्ध करने के लिए शिक्षित और दीक्षित किया। अर्जुन ने युद्ध किया और विजय प्राप्त की। अर्जुन का यह कर्म

पाप कर्म या बंधन का कारण कदापि नहीं माना जा सकता। उसने तो 'युद्धाय कृत निश्चय' के आदेश का पालन किया था।

भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि भी पूजा-उपासना करते थे; कर्ण भी सूर्य पूजा करता था, किन्तु सभी ने अपनी निष्ठाएं अधर्मी दुर्योधन के लिए अर्पित कर रखी थीं। ऐसे समय में एक सच्चे क्षत्रिय को में किस तरह बर्ताव करना चाहिए? किसी की हिंसा मत करो, नीति से चलो, सच बोलो, गुरु और बड़ों का सम्मान करो, चोरी और व्यभिचार मत करो इत्यादि सब धर्मों में पाई जाने वाली साधारण आज्ञाओं का यदि पालन किया जाय तो ऊपर लिखे कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य के झगड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता है? परंतु इसके विरुद्ध यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक इस संसार के सब लोग उक्त आज्ञाओं के अनुसार बर्ताव करने नहीं लगे हैं, तब तक सज्जनों को क्या करना चाहिए? क्या ये लोग अपने सदाचार के कारण दुष्टजनों के फंदे में अपने को फँसा लें? या अपनी रक्षा के लिए 'जैसे को तैसा' होकर उन लोगों का प्रतिकार करें? इसके सिवाय एक बात और भी है। यद्यपि उक्त साधारण नियमों को नित्य और प्रमाणभूत मान लें, तथापि कार्य–कर्त्ताओं को अनेक बार ऐसे मौके आते हैं कि उस समय उक्त साधारण नियमों में से दो या दो से अधिक नियम एकदम लागू होते हैं। उस समय 'यह करूं या वह करूं' इस चिन्ता में पड़कर मनुष्य पागल–सा हो जाता है। अर्जुन पर ऐसा ही मौक़ा आ पड़ा था। परन्तु अर्जुन के सिवाय और लोगों पर भी ऐसे कठिन अवसर अक्सर आया करते हैं। कोई दुष्ट मनुष्य हाथ में शस्त्र लेकर तैयार हो जाए और उस समय हमारी रक्षा करने वाला हमारे पास कोई न हो; तो उस समय हमें क्या करना चाहिये? क्या 'अहिंसा परमो धर्मः' कहकर ऐसे आततायी मनुष्य की उपेक्षा की जाय? या, यदि वह सीधी तरह से न माने तो यथाशक्ति उसका शासन किया जाय? मनु जी कहते हैं–

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।। [5]

यदि सब लोग हिंसा छोड़ दें तो क्षात्र धर्म कहाँ और कैसे रहेगा? यदि क्षात्र धर्म नष्ट हो जाए तो प्रजा की रक्षा कैसे होगी? सारांश यह है कि नीति के सामान्य नियमों से ही सदा काम नहीं चलता; नीतिशास्त्र के प्रधान नियम– अहिंसा में भी कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का सूक्ष्म विचार करना ही पड़ता है। अहिंसा धर्म के साथ क्षमा, दया, शान्ति आदि गुण शास्त्रों आदि में कहे गए हैं; परन्तु सब समय शान्ति से कैसे काम चल सकेगा? सदा शान्त रहने वाले मनुष्यों के बाल–बच्चों को भी दुष्ट लोग हरण किए बिना नहीं रहेंगे। इसी कारण का प्रथम उल्लेख करके प्रह्लाद ने अपने नाती, राजा बलि से कहा है- न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा। तस्मान्नित्यं क्षमा तात पंडितैरपवादिता।। महाभारत [6] में

कई स्थानों में कहा है 'न व्याजेन चरेद्धर्मं' धर्म से बहाना करके मन का समाधान नहीं कर लेना चाहिए; क्योंकि तुम धर्म को धोखा नहीं दे सकते, अपितु तुम खुद धोखा खा जाओगे। अच्छा, यदि हूँ– हूँ करके कुछ बात बना लेने का भी समय न हो, तो क्या करना चाहिए? शांतिपर्व के सत्यानृत अध्याय [7] में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं– अकूजनेन चेन्मोक्षो नावकूजेत्कथंचन। अवश्यं कूजितव्ये वा शंकेरन्वाप्यकूजनात्। श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम्। अर्थात; 'यह बात विचारपूर्वक निश्चित की गई है कि यदि बिना बोले मोक्ष या छुटकारा हो सके, तो कुछ भी हो, बोलना नहीं चाहिए। और यदि बोलना आवश्यक हो अथवा न बोलने से (दूसरों को) कुछ संदेह होना संभव हो, तो उस समय सत्य के बदले असत्य बोलना ही अधिक प्रशस्त है।' इसका कारण यह है कि सत्य धर्म केवल शब्दोच्चार ही के लिए नहीं है, अतएव जिस आचरण से सब लोगों का कल्याण हो, वह आचरण सिर्फ़ इसी कारण से निंद्य नहीं माना जा सकता कि शब्दोच्चार अयतार्थ है। जिससे सभी की हानि हो, वह न तो सत्य ही है और न ही अहिंसा।

भीष्म पितामह ने परशुराम से और अर्जुन ने द्रोणाचार्य से युद्ध किया। और जब प्रह्लाद ने देखा कि अपने गुरु, जिन्हें हिरण्यकशिपु ने नियत किया है, भगवत्प्राप्ति के विरुद्ध उपदेश कर रहे हैं; तब उसने इसी तत्त्व के अनुसार उसका निषेध किया है। शांतिपर्व में स्वयं भीष्म पितामह श्रीकृष्ण से कहते हैं कि यद्यपि गुरु लोग पूजनीय हैं तथापि उनको भी नीति की मर्यादा का अवलंब करना चाहिए; नहीं तो–

समयत्यागिनो लुब्धान् गुरुनपि च केशव। निहन्ति समरे पापान् क्षत्रियः स हि धर्मवित्।।

'हे केशव! जो गुरु मर्यादा, नीति अथवा शिष्टाचार का भंग करते हैं और जो लोभी या पापी हैं, उन्हें लड़ाई में मारने वाला क्षत्रिय ही धर्मज्ञ कहलाता है'। [8] किरातकाव्य में भारवि का कथन है कि:–

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।'[9] अर्थात् जिस मनुष्य को अपमानित होने पर भी क्रोध नहीं आता उसकी मित्रता और द्वेष दोनों ही बराबर हैं।' क्षात्रधर्म के अनुसार देखा जाए यही कहा गया है कि–

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी। क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्।।

अर्थात् 'जिस मनुष्य को (अन्याय पर) क्रोध आता है और जो (अपमान को) सह नहीं सकता, वही पुरुष कहलाता है। जिस मनुष्य में क्रोध या चिढ़ नहीं है वह नपुंसक ही के समान है।[10]

महाभारत में अनेक स्थानों पर भिन्न–भिन्न कथाओं के द्वारा यह प्रतिपादन किया गया है कि शूरता, धैर्य, दया, शील, मित्रता, समता आदि सब सद्गुण, अपने–अपने विरुद्ध गुणों के अतिरिक्त देशकाल आदि से मर्यादित हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि कोई एक ही सद्गुण सभी समय शोभा देता है। भर्तृहरि का कथन हैः–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
'संकट के समय धैर्य, अभ्युदय के समय (अर्थात जब शासन करने का सामर्थ्य हो तब) क्षमा, सभा में वक्तृता और युद्ध में शूरता शोभा देती है। [11]

वर्तमान में देश पर छा रहे संकट के काले बादल, निर्दोष व्यक्तियों की हत्या, सामाजिक बिखराव, राजनीतिक विवशताएं, वैयक्तिक स्वार्थ, नैतिक पतन, स्वाभिमानहीनता आदि को देखते हुए यह कहना उचित प्रतीत होता है कि भारतीय समाज उस चौराहे पर पहुंच गया है, जहां मृत्यु उसे ढूंढ रही है। ऐसी स्थिति में आशा और विश्वास का यदि कोई प्रकाश स्तंभ है, तो वह है गीता।

गीता के संदेश को समझकर अपने राष्ट्रहित संबंधी, देशभक्तिपूर्ण कर्तव्य का निर्धारण करना आवश्यक है। हमारे सामने एकमात्र लक्ष्य हो देश की रक्षा, आतंकी जेहादी हत्यारों का सर्वनाश। देश किसी भी वर्ग-संप्रदाय से बड़ा होता है। हम आपसी मतभेद भुलाकर राष्ट्रधर्म को अपनाएं। उसके लिए जीवन का समर्पण करें। इसके लिए आवश्यक है पलायनवृत्ति को त्यागकर अर्जुन का व्रत धारण करें, गीता के अध्ययन की यही सार्थकता है। आज गीता ही हमारा संबल है। उसके मर्म को समझकर अर्जुन बनें और 'युद्धाय कृत निश्चयः'।

गीता-उपदेश की सार्थकता इसी में थी कि अर्जुन युद्ध करने के लिए तैयार हो जाए। वह पूरे मनोयोग से युद्ध करने के लिए न केवल तत्पर ही हुआ, अपितु महाभारत युद्ध के विजेता का गौरव भी प्राप्त कर सका। उस समय केवल एक अर्जुन था, परन्तु आज की परिस्थिति में प्रत्येक भारतवासी को अर्जुन बनना पड़ेगा, तभी भगवान श्रीकृष्ण की आराधना एवं गीता का अध्ययन-मनन सार्थक हो सकेगा।

क्षात्र-धर्म

अर्जुन, कुछ सोच-विचार जरा
निज धर्म की ओर निहार जरा
यह कायरता है पाप घोर
वीरों के हित अभिशाप घोर
रणवीरों के हित स्वर्ग-द्वार

है प्राप्त न होता बार-बार
ऐसा अवसर अर्जुन महान
पाते हैं केवल भाग्यवान
यदि तू यह अवसर छोड़ेगा
यदि तू रण से मुँह मोड़ेगा
तू अपनी इज्जत खो देगा
तू अपना धर्म डूबो देगा
तू खुद को पाप लगा लेगा
मन को संताप लगा लेगा
संसार तुझे धिक्कारेगा
कह कायर-नीच पुकारेगा
तेरा अपयश घर-घर होगा
तेरा अपयश दर-दर होगा
अपयश होता मृत्यु-समान
कब सह सकते हैं नर महान
तू कष्ट बहुत हीं पाएगा
तू जीते-जी मर जाएगा
रण में आएगा अगर काम
मर कर पाएगा स्वर्ग-धाम
यदि जीत समर तू जाएगा
तो राज धरा का पाएगा
हार और जीत दोनों समान
इसलिए युद्ध हीं श्रेष्ठ जान
यह कायरता है पाप बड़ा
उठ लड़ने को हो पार्थ खड़ा

सन्दर्भ:

1. म.स्मृति, 7.144
2. गीता,18.43
3. गीता, 2.31
4. गीता, 2.32
5. म.स्मृति, 8.350
6. महाभारत, आदिपर्व, 215.34
7. महाभारत, शांतिपर्व, 109.15, 16
8. महाभारत, शान्ति पर्व, 55.19

9. किरातकाव्य1.33
10. महाभारत, उद्योग पर्व, 132.33
11. नीतिशास्त्र, 93

विनोद कुमार,
लवली प्रोफ़ैशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब)